International Journal of Sociology and Humanities

ISSN Print: 2664-8679
ISSN Online: 2664-8687
Impact Factor: RJIF 8
IJSH 2023; 5(1): 72-74
www.sociologyjournal.net
Received: 05-03-2023
Accepted: 13-04-2023

रामजीत
स0 अ0 इण्टर कॉलेज, खालिसपुर, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
रामजीत
स0 अ0 इण्टर कॉलेज, खालिसपुर, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

गोस्वामी तुलसीदास का समन्वयवाद

रामजीत

DOI: https://doi.org/10.33545/26648679.2023.v5.i1a.97

प्रस्तावना

माँ भारती अपने आँचल में विविधताओं को समेटते हुए अनेकता में एकता का दृश्य उपस्थित करती हैं। इसका सबसे बड़ा आधार भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी विशेषता है। इसकी इसी विशेषता के कारण सदियों से निरन्तर प्रहार कर रहे वाह्य आक्रान्ता हमारी संस्कृति को नष्ट तो नहीं कर सके वरन् यहाँ आकर इसी भारतीय संस्कृति की विराटता में विलीन हो गये। इसीलिए तो मु0 इकबाल की वे पंक्तियां बार–बार याद आती हैं ''कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।''

हमारी इस संस्कृति को और उसके विराट समन्वय को आदर्श बनाने का कार्य समय–समय पर भारतीय मनीषियों, साधकों, विद्वानों और सन्यासियों ने बखूबी किया है। इन्हीं महान लोगों में एक नाम गोस्वामी तुलसीदास का आता है।, जिन्होंने रामचरितमानस जैसे लोकप्रिय ग्रंथ एवं अन्य रचनाओं के माध्यम से समन्वयवाद का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। गोस्वामी जी ऐसे समय में अवतरित हुए जब समाज का संतुलन हर क्षेत्र में बिगड़ रहा था। उनका सबसे बड़ा प्रयास यह था कि उन्होंने किसी भी व्यवस्था का विरोध न करते हुए उसी व्यवस्था में एक आदर्श व्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत किया। क्योंकि उस समय सामंतवाद का बोल–बाला था और राजा प्रजा सभी अपने धर्म को भूल चुके थें। उन्होंने रामराज्य की अभिकल्पना कर सामंती व्यवस्था में ही एक आदर्श व्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत किया। जैस; उन्होंने एक सीधी रेखा को मिटाने के बजाय उसी के समानान्तर एक लम्बी रेखा खींच दी हो।

गोस्वामी जी सही अर्थों में समन्वयवादी थें। उन्होंने इसका दो टुक उदाहरण कवितावली में प्रस्तुत किया है।

> ''धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ
> काहू की बेटी सो, बेटा न ब्याह, काहू की जाति बिगार न सोऊ
> तुलसी सरनाम गुलामु है राम को, जाको, रूचै सो कहै–कछु ओउ।
> माँगि के खैबो, मसीत को सोईबो, लैबो को, एकु न दैबै को दोऊ।[1]

समन्वय को आधार बनाने वाले लोकनायक तुलसी ने अपने समय की जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और 'रामचरितमानस' के रुप में समन्वय का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया। गोस्वामी आत्मज्ञानी पुरूष थे। उनकी अन्तर्भेदी दृष्टि समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, सम्प्रदाय और यहाँ तक कि साहित्य में व्याप्त वैषम्य, असमानता, अलगाव, विच्छिन्नता, द्वेष और स्वार्थपरता की जड़ों को गहराई से नाप चुकी थी और उनके भीतर छिपी एक सर्जक की संवेदनशीलता यह भाँप चुकी थी कि वैषम्य और विच्छिन्नता के उस युग में लोक मंगल केवल सामंजस्य और समन्वय के लेप से ही सम्भव है। समन्वय से ही उन गहरी खाइयों को पाटा जा सकता था, जो मनुष्य को मनुष्य से अलग, तुच्छ और अस्पृश्य बना रही थी। समन्वय से ही राजनीति को पारदर्शी और शासक को लोक कल्याणकारी बनाया जा सकता था। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस रुपी थाले में विचाररुपी हरिशंकरी का रोपण किया, जो सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पर्यावरण को शुद्ध प्राणवायु प्रदान कर ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः'' की प्रेरणा प्रदान कर सके।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी गोस्वामी तुलसीदास जी को लोक–नायक की संज्ञा देते हैं– उसी समन्वय की विशेषता के कारण इसलिए वह तुलसीदास के काव्य में समन्वय की प्रस्तुति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

''लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार, निष्ठा और विचार पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्ठा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और समुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय। रामचरितमानस शुरू से अंत तक समन्वय–काव्य है।''[2]

तुलसीयुगीन समाज में जाति–पाँति और अस्पृश्यता का बोल–बाला था। उच्चवर्ण के व्यक्ति निम्न–वर्ण के व्यक्तियों को हेय दृष्टि से देखते थे। शुद्र वर्ण के लोग सभी प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक यहाँ तक कि शैक्षिक अधिकारों से भी वंचित थें। ऐसे में तुलसी राम और उनकी भक्ति के माध्यम से उन तमाम सामाजिक विषमताओं को दूर कर सबके लिए एक ऐसा मंच निर्मित करते हैं, जहाँ अपने–पराये का भेद–भाव मिट जाता है। उनके इष्ट राम सबरी के जूठे बेर खाते हैं। गुरु वशिष्ट निषादराज को गले लगाते हैं। राम और निषादराज की मित्रता तथा राजा भारत से निषादराज की भेंट जैसे प्रसंग ऊँच–नीच के भेद को मिटाकर समन्वय का एक उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत करते हैं–

''करत दंडवत देखि तेहि,भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहूँ लखन सब भेंट भई प्रेम न हृदय समाइ।।''[3]

धार्मिक समन्वयः तुलसी ने तत्कालीन बौद्धसिद्धों और नाथ योगियों की चमत्कारी प्रथा का खंडन करके राम के लोक रुप की स्थापना की। राम के इस रुप में उन्होंने समन्वय स्थापित करने के लिए भरपूर प्रयास किया। तत्कालीन समाज में तीन शैवों, वैष्णवों और पुष्टिमार्मियों में परस्पर विरोध था। इस कठिन समय में गोस्वामी तुलसीदास ने वैष्णों के धर्म को इतने व्यापक रुप में प्रस्तुत किया कि तीनों सम्प्रदायों को उसमें समानता का अनुभव हुआ। तुलसी के इस प्रयास की एक झलक मानस में देखी जा सकती ळें

''संकर प्रिय ममद्रोही, शिव द्रोही ममदास।
शिवद्रोही ममदास कहावा। सोनर मोंहि सपनेहु नहिं भावा।।''[4]

यह तो रहीं गोस्वामी जी की तत्कालीन धार्मिक वातावरण एवं उसमें समन्वय स्थापित करने की बात। इसका दूसरा पक्ष भी था। उस युग में सगुण और निर्गुण उपासना का भी विरोध चल रहा था। गोस्वामी जी ने ज्ञान और भक्ति के विरोध को भी मिटाने का प्रयास किया।

''अगुनहि सगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुद्ध बेदा।।
अगुन अरुप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुनहि सो होई।।[5]
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे।
जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे।[6]

ज्ञान और भक्ति का समन्वय : तुलसीदास जी ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं मानते थें क्योंकि ये दोनों ही सांसारिक क्लेशों का नाश करने वाली हैं–

''कहहिं संत मुनिवेद पुराना। नहि कुछ दुर्लभ ज्ञान समाना।।''[7]

''भगतहिं ग्यानहिं नहि कुछ भेदा। उभय हरहि भव संभव खेदा।।''[8]

हृदय की स्वच्छता पर बल : गोस्वामी जी ने तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदाय में वाह्य आडंबरों को प्रधानता न देते हुए हृदय की स्वच्छता पर बल दिया।

निर्मल मनजन सोइ मोहि पावा। मोहि कपट–छल–छिद्र न भावा।[9]

राजा–प्रजा का समन्वय : तुलसीदास जी ने मानस में राजा राम के माध्यम से राजा और प्रजा का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है–

''जो अनीति कछु भाखौ भाई। सो बरजो मोहि भय विसराई।।
मुखिया मुख सा चाहिए खान–पान कहु एक।
पालइ पोसइ सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक।।[10]

पारिवारिक समन्वय : गोस्वामी तुलसीदास ने पारिवारिक समन्वय का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया है। उन्होंने पिता और पुत्र, पति और पत्नी, सास और पुत्रवधु, भाई–भाई, स्वामी और सेवक के मध्य समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है। सीता जब मायके से ससुराल आती हैं तो दशरथ कौशिल्या को सीता को वैसे रखने की सलाह देते हैं जैसे नेत्रों की रखवाली पलकें करती हैं–

''बधु लरिकनी पर घर आई। रखियो नयन पलक की नाई।।

वन गमन के समय राम सीता को वन जाने से रोकने का प्रयास करते हैं तो सीता कहती हैं–

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसिय नाथ पुरूष बिन नारी।।[11]

गोस्वामी तुलसीदास ने नारियों को ऊँचा स्थान प्रदान किया है। मध्यकाल में गोस्वामी तुलसीदास पहले महापुरूष हैं जिन्होंने नारियों की तरफ से आवाज उठाई है–

''कतविधि सृजि नारी जग माँही। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।।''[12]

राम वन गमन के समय यह देखने को मिलता है कि वहाँ पिता से ऊपर माँ का आदेश प्रभावी होता है। कौशल्या राम से कहती हैं–

''जौ केवल पितु आयसु ताता। तौजनि जाहु जानि बड़ि माता।।
जौ पितु मातु कहौ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।[13]

साहित्यिक समन्वय : गोस्वामी तुलसीदास की समन्वयकारिणी प्रतिभा से साहित्य भी अछूता नहीं रहा। उन्होंने अपनी साहित्य–साधना किसी एक प्रचलित शैली में नहीं की। बल्कि उस समय प्रचलित सभी काव्य–शैलियों को अपनाकर साहित्यिक समन्वय का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रबंध, मुक्तक और गीति आदि सभी शैलियों को अपनाया। उनका 'रामचरितमानस' यदि श्रेष्ठ महाकाव्य है तो विनय पत्रिका एक श्रेष्ठ मुक्तक रचना है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित ब्रज, अवधी और संस्कृत का समन्वय अपने काव्य में इतनी सुन्दर शैली में किया है कि वह न तो उनकी कृतियों के प्रवाह में बाधक बना

और न भाषिक–श्रृंगार का घातक ही। अवधी में 'रामचरितमानस' साहित्य की पराकाष्ठा है। वहीं ब्रज में 'गीतावली', 'दोहावली' उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। मानस में उन्होंने इतने रचनात्मक कौशल के साथ संस्कृत और अवधी भाषाओं में सामंजस्य स्थापित किया है कि देखते ही बनता है–

''जय राम रमा रमं समनं। भवताप भयाकुल पाहि जनं।।
अवधेश सुरेस रमेस विभो। सरनागत भागत पाहि प्रभो ।।[14]

निष्कर्ष

गोस्वामी तुलसीदास ने तत्कालीन संस्कृतियों जातियों, धर्मावलंबियों के बीच समन्वय स्थापित करके दिशाहीन समाज को नई दिशा प्रदान की। समन्वय का यह भाव उनकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में ही झलकता है। कवि की भाषा सहजता, सरलता और उत्कट सम्प्रेषणीयता मानव मूल्यों को जोड़ती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने काव्य में संस्कृत, अवधी, ब्रजभाषा आदि भाषाओं का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। आज जब देश दुनिया और समाज में भोगवृति बढ़ रही है, सामाजिक व्यवस्था के तार छिन्न–भिन्न हो रहे हैं, विश्वस्तर पर आतंकवाद चुनौती बन चुका है, ऐसी विषम परिस्थितियों में गोस्वामी तुलसीदास जी की लोकापरक दृष्टि एवं समन्वयवादी विचारधारा ही मानव जाति को मानसिक एवं आत्मिक शान्ति प्रदान कर सकती है। गोस्वामी तुलसीदास जी की समन्वयवादी दृष्टि कालजयी है। वह हर समय हर समाज के लिए व्यवहारिक और सुख प्रदान करने वाली है। उन्होंने अपनी लेखनी में अपने ज्ञान और पाण्डित्य का प्रदेर्शन कभी नहीं किया। उन्होंने पहले ही लिख दिया कि।

''कवित्त विवेक एक नहीं मोरे। सत्य कहौ लिखि कागद कोरे।।
कवि न होऊ नहीं चतुर कहाँउं। मति अनुरुप राम गुन गाऊं।।[15]

आज 'रामचरितमानस' जैसा ग्रंथ पूरे संसार में अद्वितीय ग्रंथों में स्थान रखता है। गोस्वामी तुलसीदास की लोकपरक एवं समन्वयवादी दृष्टिकोण युगों–युगों तक भटकी हुई मानवता को दिशा प्रदान करती रहेगी।

सन्दर्भ सूची

1. तुलसीदास, कवितावली (पृ0 संख्या 120) संस्करण 2017
2. डॉ0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ0 1012
3. तुलसीदास, रामचरितमानस (पृ0 503) दोहा–193
4. शिवदान सिंह चौहान; दार्शनिक विचार एवं समन्वयवाद; आलोचनात्मक लेख, पृ0 30–314
5. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ0 128, ।। 1।।
6. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ0 125 ।। 2 ।।
7. तुलसीदास; रामचरितमानस; 114 ख ।। 5 ।।
8. तुलसीदास; रामचरितमानस; 114 ख ।। 7 ।।
9. तुलसीदास; रामचरितमानस; पृ0 754 दो0 43 ।। 3 ।।
10. तुलसीदास; रामचरितमानस; दो0 315 पृ0 608
11. तुलसीदास; रामचरितमानस; पृ0 397, ।। 4 ।।
12. तुलसीदास; रामचरितमानस; पृ0 116, दोहा 101 ।। 3 ।।
13. तुलसीदास; रामचरितमानस; पृ0 390 दो0 55 ।। 1 ।।
14. तुलसीदास; रामचरितमानस; उ0 का0 पृ0 923 छंद 13
15. तुलसीदास; रामचरितमानस; पृ0 33 दोहा ।। 1 ।। 5 ।।